



ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2016; 2(10): 465-467
www.allresearchjournal.com
Received: 08-08-2016
Accepted: 09-09-2016

प्रीतम सिंह सारसर

एम. ए. (इतिहास) विनायक मिज्ञान
विश्वविज्ञालय, सलेम, तमिलनाडु
यू. जी. सी. नेट उत्तीर्ण

Correspondence

प्रीतम सिंह सारसर

एम. ए. (इतिहास) विनायक मिज्ञान
विश्वविज्ञालय, सलेम, तमिलनाडु
यू. जी. सी. नेट उत्तीर्ण

तन्त्रवाद

प्रीतम सिंह सारसर

प्रस्तावना

भारत में तन्त्रवाद भी अन्य धार्मिक विश्वासों की तरह उदित हुआ जो अपने प्रभावशाली व अद्भूत विधि विधानों के कारण कालान्तर में अधिक लोकप्रिय हुआ। एक धार्मिक दार्शनिक दृष्टिकोण के रूप में तन्त्रवाद के विकास की प्रक्रिया आरम्भ हुई। यहाँ धर्म ही नहीं बल्कि एक प्रणाली थी जो केवल एक धर्म तक सीमित नहीं थी। जिस प्रकार सभी भारतीय धर्मों में भक्ति के तत्त्व मिलते हैं उसी प्रकार तन्त्र के भी तत्त्व मिलते हैं। बौद्ध, जैन, शैववाद, वैष्णववाद, शक्तिवाद सभी तन्त्र के सिद्धान्तों से प्रभावित हुए। तन्त्रवाद शब्द पश्चिमी विचारकों की देन है। तन्त्रवाद में उन क्रियाओं तथा विचारों का संकलन होता है जिनका उपयोग एक व्यक्ति सांसारिक उपायों के द्वारा पारलोकिक को समझने तथा सूक्ष्म जगत् को ब्रह्माण्ड के साथ जोड़ने के लिए करता है ताकि वह अपने अध्यात्मिक या भौतिक उद्देश्यों की पूर्ति कर सकें। मानवीय शरीर सूक्ष्म जगत् के रूप में ब्रह्माण्ड का ही अंश है। अतः अगर ब्रह्माण्ड को समझना है तो हमें मानव शरीर को समझना होगा।

तन्त्रवाद का केन्द्रिय सिद्धान्त पंचमकार है अर्थात् माँस, मद्य, मुद्रा, मैथुन, मत्स्य और तन्त्रवाद के अन्तर्गत अध्यात्मिक विचारों या साधना में ऊर्जा प्राप्त करने के लिए पंचमकार का सहारा लिया जाता है। मुद्रा जिसका वास्तविक अर्थ स्त्री ही है। हाँलाकि बाद में इसको शारीरिक मुद्रा के रूप में लिया गया है। मैथुन या स्त्री के साथ सहवास तांत्रिक कर्मकाण्डों में सबसे महत्त्वपूर्ण माना गया है। जिस स्त्री के साथ यह किया जाता है उसे शान्ति, प्रकृति या लावा कहा जाता है हालाँकि यौनिच्छा एक आधारभूत मानवीय वृत्ति है तथा इसे केवल अश्लील मान लेना तर्कसंगत नहीं है। प्रारम्भिक विद्वानों ने केवल इसी सिद्धान्त को केन्द्र में रखकर अध्ययन किया था। अधिकतर ने इसे भोग विलास का जीवन बिताने से संबंधित माना लेकिन पंचमकार केवल तन्त्रवाद का समग्र रूप नहीं है। विशाल तन्त्र साहित्य में विभिन्न तांत्रिक धाराओं तथा विविध धर्म-चरणों को स्थायी तथा सुविख्यात रूप दिया गया।

तन्त्रवाद में गुरु के महत्त्व पर अधिक बल दिया गया है। बाद में यह प्रवृत्ति मध्यकाल के भक्ति आन्दोलनों में भी मिलती है। गुरु के निर्देशों पर चलते हुए तन्त्र का अभ्यास करने वाला व्यक्ति रहस्यवादी अनुभवों की अनुभूति करता है। इस प्रक्रिया में उनकी क्रियाओं का समावेश होता है जैसे योग, मंत्र आदि। इनके अभ्यास के द्वारा ईश्वर से तदात्म्य स्थापित किया जाता है। अन्ततः एक ऐसा चरण आता है जब व्यक्ति स्वयं ईश्ट देव बन जाता है साथ ही साथ तन्त्रवाद में स्त्रियों को बहुत महत्त्व दिया गया है साथ ही इन्हें शक्ति का एक श्रोत माना गया है। तन्त्रवाद में महिलाएं गुरु बन सकती हैं। तन्त्रवाद में सती प्रथा, वेश्यावृत्ति आदि का चलन नहीं दिखता यह अपने साधनास्थल तक ही व्यभिचारी नजर आती है। तन्त्र के बाहर उसका व्यवहार उदार व शांतिप्रिय होता है।

सामान्य तौर पर तन्त्रवाद में न तो वेदों का अनुपालन किया जाता है और न ही ब्राह्मणों की सर्वोच्चता स्वीकार की जाती है, वर्णव्यवस्था तथा पितृसत्तात्मक व्यवस्था को स्वीकृति नहीं दी गई। तन्त्रवाद ने ऐसे मोक्ष की अवधारणा प्रस्तुत की जो मृत्यु के बाद नहीं मिलता बल्कि जीवन के दौरान ही मिलता है।

दुनिया में प्रत्येक वस्तु जो उत्पन्न हुई है उसका अपना एक नियम होता है वह नियम है कार्यकारक संबंध, जिसमें किसी सर्वशक्तिमान के लिए कोई स्थान नहीं है। इस दृष्टि से तन्त्रविधा भौतिकवादी होने के साथ-साथ सम्प्रदाय निरपेक्ष भी था। यही कारण है कि यह सम्प्रदाय भारत में काफी दिश्या हुआ। हालाँकि इसके मूल तत्व आज भी कायम हैं। वैदिक ज्ञान ब्रह्म को जानने को महत्त्व देता है जबकि तन्त्रवाद भौतिक ज्ञान को महत्त्व देता है। कृषि पशुपालन, धातुकर्म, वैज्ञानिक विधियाँ, शारीरिक अध्ययन आदि तन्त्र में विभिन्न सिद्धान्त हैं। और कहा गया है कि यदि शरीर को जान पायेंगे तो ब्रह्माण्ड को भी जान सकते हैं। तन्त्रवाद में तन्त्र-मन्त्र से सामान्य रोग, साँप, विषैले कीड़े के काटने का निवारण किया जाता है। जहाँ उच्चवर्ग अमूर्त की ओर बढ़ता है

वहीं तन्त्र दिन प्रतिदिन के कार्यों से जुड़े लोगों के चिंतन और धर्म के रूप में विकसित होता है। भारतीय चिकित्सा शास्त्र जो कि चरकसंहिता, सुश्रुतसंहिता पर आधारित है इसका आधार तन्त्र ही है। हालाँकि आरम्भ में पुराणों में तांत्रिक प्रथाओं की आलोचना की गई थी किन्तु बाद में कई पुराणों में, खासतौर पर नवीं शती के बाद से इसमें तांत्रिक तत्वों का समावेश भी होने लगा था जैसे भगवद्गीता पुराण में उपर्युक्त प्रमाण मिलते हैं। पशुपत शैव धर्म में तन्त्रवाद के साथ गहरा संबंध बनाया।

उत्तरोत्तर बौद्ध व जैन धर्म में भी इसके तत्वों का समावेश देखने को मिलता है। बौद्ध मंत्रयान/ब्रजयान का उदय छठी सदी में हुआ।

गुह्या समाज ब्रजशिखर आदि बौद्धों के प्राचीनतम मंत्र है बौद्ध तन्त्रों ने 6वीं व 7वीं सदी में मजबूती से बंगाल में अपने पैर जमाए। जैन प्रभाव के कारण कुछ तांत्रिक ग्रंथों का संकलन पूर्वमध्यकाल में ही गुजरात, महाराष्ट्र, कर्नाटक में भी किया गया। हरिभद्र सूरी की कृति समराइच्चकछ (8वीं शताब्दी) तांत्रिक विचारों से प्रभावित थी। 1047 ई. में एक जैन मुनि ने मैसूर में भैरव पदमावती कल्प नामक तांत्रिक ग्रंथ का संकलन किया।

इन जैन तांत्रिक ग्रंथों के अतिरिक्त दक्षिण भारत में पूर्वमध्यकाल में विशेष रूप से 8वीं सदी में बाद से शैव तथा वैष्णव दोनों सम्प्रदायों के 28 आगमों की रचना की गई और तन्त्र सम्प्रदाय के अनुयायियों ने मंदिर बनाने, प्रतिमाएँ तथा पूजा उपासना में उनका उपयोग किया। आन्ध्र प्रदेश तथा तमिलनाडु के मंदिरों में वैष्णव तांत्रिक या तो तामसिक या पान्चरात्र (सात्विक) पूजन पद्धति या दोनों के निर्माण का अनुशरण करते थे।

तन्त्रवाद या तांत्रिक धर्म के उदय व विस्तार को समझने के लिए हमें तत्कालीन सामाजिक व आर्थिक परिस्थितियों को समझना होगा तथा यह भी समझना होगा कि तन्त्र का उदय पूर्वमध्यकाल में ही क्यों हुआ और शाक्तपीठ परिपक्व ब्राह्मणीय क्षेत्र से बाहर जनजातीय क्षेत्रों में ही क्यों कायम हुए। इसी संदर्भ में बेवर का कहना है कि तांत्रिक धर्म का उदय व विस्तार में ब्राह्मणों की लालची प्रवृत्ति स्पष्ट रूप से दिखाई देती है क्योंकि यह ब्राह्मण कुछ धन (दान-दक्षिणा) के लालच में ग्रामीण इलाकों के देवी-देवता की पूजा करने को तैयार थे। कुछ विद्वानों का मानना है कि तांत्रिक धर्म का उदय इसीलिए हुआ क्योंकि वह आम नागरिकों की शारीरिक इच्छाओं की

पूर्ति करने में सफल रहा। वास्तव में गुप्तोत्तर काल में उभरे दो प्रमुख दृष्टिकोण भक्ति तथा तन्त्र का उदय व विकास अंतर्संबंधी प्रक्रियाएँ थी तथा इसके मूल में भूमिदान सम्बंधी अर्थव्यवस्था थी।

बी.डी. चटोपाध्याय ने तन्त्रवाद के स्रोतों को समझने के लिए माँ के अधिकार को एक महत्त्वपूर्ण कारक माना है क्योंकि तन्त्रवाद में भी नारी सिद्धान्तों पर अधिक बल दिया गया है। आर.एस. शर्मा के अनुसार भूमिदानों के कारण कृषि के विस्तार के फलस्वरूप मातृदेवी की प्रधानता दिखाई देती है। इस प्रधानता के विकास का कारण ब्राह्मणों की संस्कृत संबंधित धारा तथा कबाइली धारा के बीच सांस्कृतिक आदान-प्रदान की प्रक्रिया थी। शर्मा ने भूमिदानों के कारणों में व्यापार तथा नगरों का हास व सिक्कों की कमी को कारण बताया। कबाइली लोगों को ब्राह्मणों ने निम्न सामाजिक दर्जा दिया। ब्राह्मणों ने इन कबाइली लोगों की आध्यात्मिक क्षतिपूर्ति द्वारा इन्हें सन्तुष्ट करना आवश्यक समझा। अतः कबाइली लोगों की अनेक देवियों एवं मातृसत्तात्मक परम्पराओं को बड़े पैमाने पर ब्राह्मणों द्वारा मान्यता दी गई। अतः तन्त्रवाद के विकास को कृषि विकास तथा विस्तार के संदर्भ में समझना आवश्यक है। दोनों संस्कृति के मिलन से उत्संस्करण की प्रक्रिया आरम्भ हुई जिससे दोनों संस्कृतियों में कुछ तत्वों का परस्पर आदान प्रदान हुआ। जनजातिय क्षेत्रों में मातृदेवी की पूजा का व्यापक प्रचलन था। स्पष्ट है कि स्त्रियों की स्थिति अवश्य महत्त्वपूर्ण थी। पूर्वमध्यकालीन धर्मशास्त्रों में कुछ खास परिस्थितियों में विधवा विवाह की अनुमति दी गई। स्त्रीदान के दायरे को बढ़ाया गया। स्त्रियों की स्थिति में यह परिवर्तन कबाइली समाज से अदान-प्रदान के फलस्वरूप उत्पन्न हुआ क्योंकि प्रारम्भिक वैदिक ग्रंथ में देवियों का बड़ा गौण स्थान था। बाद में तन्त्रवाद के सभी तत्वों में या रूपों में नारी को केन्द्रीय तत्व बनाया गया। मातृदेवी की पूजा पहले भी होती थी किन्तु छवीं शती में बौद्ध तथा ब्राह्मणीय सम्प्रदायों के साहित्य एवं अन्य लिखित परम्पराओं में उनको महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ। कबाइली कर्मकाण्डों के संबंध में ब्राह्मणों की प्रारम्भिक प्रतिक्रिया प्रतिकूल ही रही किन्तु ये धार्मिक कृत्य मातृदेवी को प्रमुख स्थान प्रदान करने वाले तन्त्र सम्प्रदाय के अभिन्न अंग बन गए।

पहले से मौजूद अनेक मातृदेवी मंदिरों को उत्तरोत्तर फैलती हुई सर्वव्यापी ब्राह्मण परम्परा में 6वीं शती में नियमित स्थान दिया गया। आर.एस.शर्मा के अनुसार कोई भी तन्त्रपीठ 5वीं 6वीं सदी से पूर्व का नहीं है। तिरुपति का पदमावती मंदिर भी 8वीं सदी का है। बालाजी वैष्णव मंदिर भी इसी सदी का है। 64 योगिनियों के लगभग सभी मंदिर पूर्वी मध्यप्रदेश तथा उडिया के जनजातिय क्षेत्रों में अवस्थित है। सभी मध्यकालीन रचनाओं में अपनी-अपनी सूची में उत्तरोत्तर अधिकाधिक पीठों के नाम शामिल करने की प्रवृत्ति दिखाई देती है। एक अन्य महत्त्वपूर्ण बात यह है कि तांत्रिक मठों, आचार्यों आदि का निर्वाह चूक भूमिदानों की बंदोबस्त होता है अतः तांत्रिक मठों तथा देवकुलों का स्वरूप भी उसी श्रेणीबद्ध सामाजिक एवं प्रशासनिक संगठन पर आधारित हुआ था जो सामंती व्यवस्था की विशेषता थी।

निष्कर्ष: कहा जा सकता है कि तन्त्रवाद एक धार्मिक दार्शनिक दृष्टिकोण के रूप में विकसित हुआ और इसने अन्य तत्कालीन धार्मिक व्यवस्था को प्रभावित किया जिसका प्रमाण हमें अनेक धार्मिक साहित्य व उनकी धार्मिक गतिविधियों में परिलक्षित होता है। साथ ही तन्त्रवाद में पंचमकार सिद्धान्त को प्रमुखता दी गई। साथ ही ब्राह्मणीय वर्णव्यवस्था तथा वेदों को नकारते हुए गुरु व स्त्रियों को महत्त्व दिया गया। जहाँ वैदिक धर्म में ब्रह्म को जानने पर बल दिया गया वहीं तन्त्रवाद दैनिक गतिविधियों / भौतिक ज्ञान को महत्त्व देता है। इस प्रकार तन्त्रवाद के उदय व विस्तार के संदर्भ में इतिहासकारों ने विभिन्न मतों का वर्णन किया है।

संदर्भ

1. Kosambi DD. Myth and Realty. 1962
2. Nandi RN. Social roots of Religious in Ancient India. 1986.
3. श्रीवास्तव KC. - प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति